भाषा को कैसे 'सेलिब्रेट' किया जाता है, भोपाल ने सिखाया

अनेक विद्वानों ने अनेक कोणों से दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन की आलोचना की है। नकारात्मकता का यह उद्घोष भी कहीं न कहीं हिंदी भाषा-संसार की सकारात्मकता और जीवंतता की ओर संकेत करता है। मैं ऐसे विद्वानों से क्षमायाचना सहित अपनी मतभिन्नता दर्ज करना चाहूँगा। मैंने बहुत अधिक विश्व हिंदी सम्मेलन तो प्रत्यक्ष नहीं देखे, किंतु पिछले तीन सम्मेलनों (न्यूयॉर्क, जोहानीसबर्ग और भोपाल) के अपने अनुभव के आधार पर मैं भोपाल के आयोजन को बेहद उत्कृष्ट मानता हूँ। ऐसा नहीं कि इस बार के सम्मेलन में कोई कमियाँ नहीं रहीं। वे अवश्य थीं, जैसी कि हर बार होती हैं। लेकिन सम्मेलन की विशेषताओं और सफलताओं के सामने मुझे उनकी कोई विशेष अहमियत प्रतीत नहीं होती। भोपाल ने अद्वितीय आयोजन करके दिखाया है। मेरी स्मृति में इतना भव्य, व्यापक और सुप्रबंधित कोई अन्य आयोजन नहीं दिखता, सिवाय माइक्रोसॉफ्ट के सिएटल (अमेरिका) स्थित मुख्यालय में आयोजित एमवीपी समिट के, जिसमें भाग लेने का मौका मुझे कोई आठ साल पहले मिला था। लेकिन वह दुनिया की सबसे बड़ी सॉफ्टवेयर कंपनी थी जो तकनीकी लिहाज से सर्व-सक्षम थी।

भोपाल में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन ने हमें सिखाया है कि अपनी भाषा का उत्सव कैसे मनाया जाता है। अंग्रेजी में जिसे अपनी भाषा को 'सेलिब्रेट' करना कहते हैं। हमारे किसी राज्य या शहर ने पहले कभी किसी भारतीय भाषा को इस अंदाज में सेलिब्रेट किया हो, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है। आजादी के बाद से हिंदी परस्पर विरोधाभासी भावनाओं के बीच पिसती रही है। एक वर्ग उसकी उपेक्षा से चिंतित है और दूसरा उसे थोपे जाने से। कोई 'पिछड़ेपन' के इस प्रतीक से मुक्ति के लिए छटपटा रहा है। अफ़सरशाही, मीडिया और पश्चिमपरस्तों ने कुछ ऐसा माहौल बना दिया है कि हिंदी-भाषी व्यक्ति सार्वजनिक रूप से हिंदी का अख़बार पढ़ते हुए, स्कूलों में अपने बच्चों से हिंदी में बात करते हुए और दफ़्तरों में हिंदी बोलते हुए संकोच का अनुभव करने लगा है। और ऐसे माहौल में हम अपनी भाषा के गौरव को महसूस करने की बात करते हैं! भोपाल ने हिंदी के गौरव की लंबी-चौड़ी बातें नहीं कीं। उसने प्रत्यक्ष दिखाया है कि किसी भाषा के प्रति गौरव महसूस करना वास्तव में क्या होता है।

दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान भोपाल मध्य प्रदेश की नहीं बल्कि हिंदी की राजधानी प्रतीत हो रहा था। अगर आप भाषा और साहित्य के लिए समाज में किसी गौरवशाली स्थान की कल्पना करते हैं तो आपको भोपाल जाना चाहिए था। भोपाल में यह सपना जीवंत हो गया था। हवाई अड्डे से आयोजन स्थल तक मार्ग में जगह-जगह विद्वानों का स्वागत करते अनगिनत बैनर और पोस्टर, चौराहों

पर तुलसीदास से लेकर प्रेमचंद और माखन लाल चतुर्वेदी से लेकर अज्ञेय तक हिंदी के महान रचनाकारों के विशाल चित्र, और अखबारों में हिंदी पर केंद्रित बड़े-बड़े परिशिष्ट एक आश्चर्यजनक,अविश्वसनीय किंतु आह्लादित कर देने वाला अनुभव था। दुकानों के नामपट्ट हिंदी में बदल दिए गए थे, रास्तों के नाम हिंदी में थे। जिधर देखिए, हिंदी उत्सव मनाती दिख रही थी। समापन समारोह में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की तरफ़ से कही गई इस बात में अतिशयोक्ति नहीं थी कि आज पूरा भोपाल हिंदीमय है। यहाँ के ताल-तलैया, शिखर-शिखरिया सब हिंदीमय हैँ।

इसे आप भले ही भव्यता और आडंबर कह लें, लेकिन भोपाल ने ऐसा माहौल रच दिया था कि हिंदी के प्रति गौरव का भाव स्वत: आता था। शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे वहाँ अंग्रेज़ी बोलने की आवश्यकता महसूस हो रही हो और हिंदी के प्रति हीनता का भाव प्रतीत हुआ हो। क्या आज हिंदी को सबसे बड़ी आवश्यकता इसी आत्म गौरव को जगाने की नहीं है? क्या हिंदी भाषियों को हिंदी की हीनता के भाव से मुक्ति दिलाना हमारा पहला लक्ष्य नहीं है?यदि हाँ, तो भोपाल को बधाई दीजिए कि उसने यह लक्ष्य हासिल करके दिखा दिया। इस शहर ने इन आयोजनों को भारत में ही स्थायी रूप से आयोजित करने की आवश्यकता को भी रेखांकित किया है। अगर सभी राजधानियाँ हिंदी को इसी तरह का गौरव और सम्मान दे सकें तो क्या बात हो!

विश्व हिंदी सम्मेलन को केंद्र और राज्य सरकारों से जैसी अहमियत इस बार मिली, वैसी इंदिरा गांधी के दौर के बाद कभी नहीं मिली। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और उनके सहयोगी मंत्री जनरल. डॉ. विजय कुमार सिंह कई सप्ताह से तैयारियों में जुटे थे। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान खुद राज्य स्तर पर सारे इंतजाम की देखरेख कर रहे थे। सुषमा स्वराज ने इस सिलसिले में भोपाल के कई दौरे किए और सम्मेलन शुरू होने से कुछ दिन पहले से वहाँ मौजूद थीं। मध्य प्रदेश के शिक्षा मंत्री और पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री की प्रत्यक्ष भूमिका रही। राज्यसभा सदस्य अनिल माधव दवे, मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग के प्रमुख सचिव मनोज श्रीवास्तव और लोकसभा सदस्य आलोक संजर दिन-रात प्रबंधन के काम में जुटे रहे। उसके बाद भोपाल के दो प्रमुख विश्वविद्यालयों- माखन लाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय और अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय ने जमीनी स्तर पर हुई तैयारियों, योजनाओं, ढाँचागत विकास और प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा) और केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा) ने सम्मेलन की विषय-वस्तु के साथ-साथ प्रदर्शनियों और प्रकाशनों के जरिए अहम योगदान दिया। चारों संस्थानों के प्रमुख- बीके कुठियाला, मोहन लाल छीपा, गिरीश्वर मिश्र और कमल किशोर गोयनका शुरूआती तैयारी के समय से ही जुड़े रहे और सम्मेलन के समापन तक दौड़-धूप करते दिखाई दिए।

दिल्ली में विदेश विभाग ने एक अलग प्रकोष्ठ स्थापित किया था। सम्मेलन में भागीदारी करने से पहले लगता था कि इतने सारे पक्ष मिलकर विश्व हिंदी सम्मेलन का क्या हाल करेंगे? सबकी अपनी-अपनी प्राथमिकताएँ, अपना-अपना सोच, अपने-अपने तौर-तरीके और अपना-अपना अहं। लेकिन सम्मेलन में जाने पर अहसास हुआ कि इतने सारे लोगों को सम्मेलन की व्यवस्था से जोड़ना कितना उपयोगी रहा।

अगर केंद्र और राज्य सरकार के बीच यह उत्कृष्ट तालमेल न होता, यदि जमीनी स्तर पर सैंकड़ों छात्रों और दर्जनों शिक्षकों को न लगाया जाता, यदि मध्य प्रदेश सरकार और भोपाल नगर निगम ने इसे प्रतिष्ठा और गौरव का प्रश्न न बनाया होता तो चार-पाँच हजार लोगों की भागीदारी वाला यह

आयोजन इस किस्म की उत्कृष्टता की छाप नहीं छोड़ सकता था। किसी बड़े आयोजन का प्रबंधन कैसे किया जाना चाहिए, इसे भोपाल ने बखूबी सिखाया है। इतने लोगों की मौजूदगी के बावजूद कहीं कोई अफरा-तफरी नहीं, कहीं कोई कुव्यवस्था नहीं, कहीं किसी चीज़ की कमी नहीं। हजारों लोगों का भोजन इतनी सुगमता से हो जाता था कि आश्चर्य होता था। न पानी की कमी, न जन-सुविधाओं की। सभी प्रतिनिधियों के पंजीकरण के लिए कई केबिन लगे थे जहाँ कंप्यूटर से आपका नाम खोजकर तुरंत प्रतिभागी कार्ड हाथ में थमाने के लिए बेताब स्वयंसेवक मौजूद थे। कोई मदद चाहिए तो आपके सहयोग के लिए तत्पर। कहीं इधर-उधर होने या बहाना बना देने की प्रवृत्ति नहीं दिखी। मैंने इसे प्रत्यक्ष आजमाया था।

हिंदी के जिन विद्वानों और विशेषज्ञों को सम्मेलन में भाग लेने का मौका मिला, उनके लिए यह अविस्मरणीय अनुभव था। मध्य प्रदेश सरकार को ऐसे जुटी थी जैसे हर मंत्री और अधिकारी के घर का अपना आयोजन हो। मुख्यमंत्री और उनके सहयोगियों के बीच इस आयोजन को लेकर भावुकता दिखाई देती थी। अब भले ही आप इसे व्यापम से जोड़ लें या फिर बिहार में होने जा रहे विधानसभा चुनाव से लेकिन भोपाल के आयोजन में कुछ बात थी! अन्यथा हमने कब ऐसा देखा था कि किसी आयोजन में रवानगी से पहले ही टिकट के साथ-साथ आधिकारिक रूप से यह सूचना दी जाए कि भोपाल में आपके साथ फलाँ छात्र को सहायक के रूप में नियुक्त किया गया है और फलाँ वाहन चालक एक वाहन लेकर हमेशा आपके साथ रहेगा। हो सकता है कि कुछ लोग कहें कि धन खर्च कर कोई भी सरकार ऐसा कर सकती है। लेकिन यदि दिल्ली से रवानगी के पहले खुद विदेश मंत्री के कार्यालय से फोन कर आपसे पूछा जाए कि क्या आपको टिकट और अन्य चीजें मिल गई हैं और क्या भोपाल में आपके लिए नियुक्त सहायक ने आपसे फोन पर बात कर ली है तो?

दिल्ली के इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचकर चेक-इन कराने लगते हैं तो एअर इंडिया के अधिकारी बताते हैं कि आपका तो पहले ही 'वेब चेकिन' किया जा चुका है। आपको इस काम में समय लगाने की जरूरत नहीं है, बोर्डिंग पास लीजिए और सुरक्षा जाँच के लिए बढ़िए। उत्कृष्ट प्रबंधन और मेहमाननवाजी की इससे बेहतर मिसाल कहाँ मिलेगी, वह भी किसी हिंदी आयोजन के संदर्भ में, कृपया बताएँ। इसकी तुलना न्यूयॉर्क से कीजिए जब भारत से गए प्रतिनिधि घंटों तक पंक्तिबद्ध खड़े होकर यह स्पष्ट होने का इंतजार करते रहे थे कि उन्हें रहना कहाँ है। और सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में रूसी विद्वान वारान्निकोव तथा कमलेश्वर जी को कैसे अपमान का अहसास हुआ था, याद है आपको! भोपाल में ऐसी कोई घटना नहीं हुई। हिंदी और उसके साधकों को वहाँ यदि कुछ मिला तो वह था- स्नेह और सम्मान।

भोपाल में हवाई अड्डे से आयोजन स्थल तक पहुंचने के मार्ग में आप चारों ओर हिंदी का जो सम्मान देखते हैं, वह आपको सम्मेलन की शुरूआत से पहले ही भावुक कर देता है। मुझे लगता है कि दोनों सरकारों के उस संकल्प और उन सैंकड़ों अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं की मेहनत के साथ हम बड़ी नाइंसाफी कर रहे हैं अगर हम कतिपय छोटी चूकों और लापरवाहियों को बहुत बड़े आकार में पेश कर सम्मेलन को नाकाम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि एक लेखक और पत्रकार के रूप में घटनाक्रम की निष्पक्ष तसवीर पेश करना हमारा कर्तव्य है।

अब बात प्रधानमंत्री के भाषण की। कुछ विद्वानों ने लिखा कि उन्होंने यह कहा कि दुनिया में सिर्फ तीन भाषाएँ बच जाएंगी। क्षमा करें, मैं वहाँ मौजूद था और प्रधानमंत्री का भाषण तो रिकॉर्ड होकर विश्व

हिंदी सम्मेलन की वेबसाइट पर उपलब्ध है, जरा उसे देख तो लीजिए। श्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि आज के तकनीकी दौर में, आगे चलकर जिन तीन भाषाओं का दबदबा रहने वाला है, वे हैं- अंग्रेजी, मंदारिन और हिंदी। यह वही बात है जो तकनीकी विश्व में एरिक श्मिट (गूगल के चेयरमैन) समेत बहुत से दिग्गज कह रहे हैं। हिंदी भाषा पर मोदी जी का अधिकार है, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन वे भाषा को एक विश्लेषक की दृष्टि से भी देखते हैं और उसके बारे में उनकी एक अलग मौलिक दृष्टि है, इसका अनुमान सम्मेलन से पहले मुझे नहीं था। भाषा पर उनका भाषण न सिर्फ रुचिकर था बल्कि जमीन से जुड़ा हुआ था। उन्होंने कहा कि गुजरात में जब कोई झगड़ता है तो हिंदी में बोलने लगता है। यह एक तथ्य है, जिसका जिक्र उन्होंने विनोदपूर्ण ढंग से किया था। आशय यह था कि जैसे कोई हिंदी भाषी व्यक्ति खास परिस्थितियों में अंग्रेज़ी बोलना अधिक प्रतिष्ठा का विषय समझता है उसी तरह कुछ अन्य भारतीय भाषाएँ बोलने वाले लोग हिंदी में बोलना प्रतिष्ठा का प्रश्न समझते हैं। झगड़ा होगा तो वे हिंदी में बोलने लगेंगे ताकि बात में ज्यादा वज़न आए। मैं एक राजस्थानी होने के नाते इस तरह का अनुभव स्वयं अनेक बार कर चुका हूँ।

दिल्ली में एक आयोजन में जब यह कहा जा रहा था कि हिंदी पच्चीसेक साल में खत्म हो जाएगी, तब मैंने असहमति दर्ज करते हुए कहा था कि आज अगर एक धारा हिंदी से अंग्रेजी की ओर बह रही है तो दूसरी धारा भारतीय भाषाओं से हिंदी की तरफ भी बह रही है। अगर हिंदी कुछ लोगों को खो रही है तो बहुत से नए लोगों को जोड़ भी रही है। हिंदी की बोलियाँ बोलने वाले इसका एक उदाहरण हैं। मैं जब अपने गांव जाता हूँ तो राजस्थानी में बोलता हूँ लेकिन वहाँ के बच्चे मुझे हिंदी में जवाब देते हैं। कारण? उन्हें लगता है कि दिल्ली से आए व्यक्ति के साथ राजस्थानी की बजाए हिंदी में बात करेंगे तो ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। मोदी जी ने क्या गलत कहा?

जो अहम बात प्रधानमंत्री ने कही और जिसकी उपेक्षा कर दी गई, वह यह थी कि हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के करीब लाने के लिए आवश्यक है कि तमिल, तेलुगू आदि भाषा-भाषियों को यह अहसास कराया जाए कि हिंदी उनके लिए अंग्रेज़ी जैसी चुनौती नहीं है। परस्पर साहचर्य और मेल-मिलाप का एक अच्छा सुझाव भी उन्होंने दिया और वह यह कि हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करे तथा अन्य भारतीय भाषाएँ हिंदी के शब्द ग्रहण करें। जैसे हिंदी तमिल के और तमिल हिंदी के। कितना अच्छा सुझाव है यह? यदि हम ऐसा करेंगे तो क्या दोनों भाषाओँ के समृद्ध नहीं करेंगे? दोनों भाषाओं को एक-दूसरे के करीब लाने का कितना सुगम मार्ग हो सकता है यह?

गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के बारे में जो टिप्पणी इस सम्मेलन में की, वैसी पिछले कई दशकों में नहीं सुनी गई। क्या हम हिंदी वालों को इस टिप्पणी के लिए उनका अभिनंदन नहीं करना चाहिए? माना कि लक्ष्य बहुत दूर है और आम तौर पर सरकारी तंत्र खुद ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के मार्ग में आ जाता है, लेकिन यह कम साहसिक नहीं है कि देश का गृह मंत्री तमाम विवादों के बावजूद सार्वजनिक मंच से हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात करता है। हमें उनके बयान को ताकत देनी चाहिए या आलोचनाओं से उन्हें हतोत्साहित करना चाहिए?

मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने हिंदी के प्रति जिस किस्म की भावुकता दिखाई और एक आदर्श मेजबान की जैसी भूमिका दुनिया भर से जुटे हिंदी विद्वानों और हिंदी प्रेमियों के प्रति दिखाई वह भी अद्वितीय थी। उन्होंने खुद सम्मेलन के दौरान सत्रों की अध्यक्षता की और वहाँ पारित किए गए अनेक प्रस्तावों पर कम से कम मध्य प्रदेश में तुरंत प्रभाव से अमल करने की घोषणा भी समापन

समारोह में ही कर दी। उदाहरण के तौर पर यह कि मध्य प्रदेश में सभी उत्पादों पर हिंदी में भी विवरण अंकित होगा। ऊंची अदालतों में हिंदी का प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए प्रदेश सरकार हाईकोर्ट से चर्चा करेगी। श्री चौहान की वह भावनात्मकता मध्य प्रदेश में हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है जो उन्होंने अपने समापन भाषण में दिखाई। लंबे-चौड़े वायदे और घोषणाएँ कोई भी कर सकता है लेकिन वैसी भावुकता जबरदस्ती पैदा नहीं की जा सकती। वह हृदय के भीतर से निकलती है।

केंद्र और राज्य सरकारों ने सम्मेलन के सत्रों को कितना महत्व दिया होगा, वह श्री चौहान, दो राज्यपालों और केंद्र सरकार के मंत्रियों की निरंतर मौजूदगी से स्पष्ट है जिन्होंने हिंदी से जुड़े कुछ सत्रों की खुद अध्यक्षता की और कुछ में दर्शक के रूप में बैठे। सूचना प्रौद्योगिकी और दूरसंचार मंत्री रविशंकर प्रसाद ने 'सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी' विषय पर उस सत्र की अध्यक्षता की, जिसमें मैंने भागीदारी की थी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ. हर्षवर्धन ने एक अन्य सत्र की अध्यक्षता की। गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा और पश्चिम बंगाल के राज्यपाल केशरी नारायण त्रिपाठी ने दो अन्य सत्रों की अध्यक्षता की। विदेश राज्य मंत्री जनरल वीके सिंह अनेक सत्रों में दिखाई देते रहे। मॉरीशस की शिक्षा मंत्री लीला देवी दुखन लक्ष्मण भी'गिरमिटिया देशों में हिंदी' संबंधी सत्र में निरंतर मंच पर उपस्थित रहीं। उनके भावपूर्ण भाषण के अंत में श्रोताओं ने खड़े होकर अभिनंदन किया। विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस के कार्यकारी महासचिव गंगाधर सिंह सुखलाल 'गुलशन' ने प्रभावी उपस्थिति दर्ज की। हिंदी के सम्मेलनों को सरकारों की तरफ़ से इतनी अहमियत दिया जाना हमारे लिए एक नया अनुभव था। लेकिन पता चला कि सुषमा जी और शिवराज सिंह जी चाहते हैं कि सम्मेलन की चर्चाएँ महज रस्म-अदायगी बनकर न रह जाएँ। मंत्री मुद्दों को समझें और जब मंत्री खुद जमीनी मुद्दों से वाकिफ़ होंगे तो सरकार के स्तर पर सम्मेलन के मंतव्यों को गंभीरता से लेना सुनिश्चित होगा। कोई ठोस नतीजा सामने आएगा।

विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान हुए सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बारे में क्या कहा जाए! अभूतपूर्व और विलक्षण! 'अथ हिंदी कथा' के रूप में नृत्य निर्देशिका मैत्रेयी पहाड़ी और उनके सैंकड़ों शिष्यों ने भाषा के अतीत और वर्तमान को नृत्यों की श्रृंखला में पिरोकर अविस्मरणीय बना डाला। अगर विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी की समृद्धि और जीवंतता का उत्सव था तो भोपाल में हुए सांस्कृतिक कार्यक्रम उसकी जान थे। मुझे एक भी प्रतिभागी नहीं मिला जिसने कार्यक्रम की प्रशंसा न की हो। भारत के लोक नृत्यों का एक कार्यक्रम पहले दिन हुआ। देश-विदेश से आए मेहमानों के बीच भारतीय संस्कृति के इस मजबूत और अभिन्न पक्ष को प्रदर्शित करने का निर्णय काबिले तारीफ था। पहले के आयोजनों में बड़ी हस्तियाँ आती रही हैं और वे भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं, लेकिन इस बार सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारत की आत्मा के दर्शन हुए। महिषासुर मर्दिनी और गुजरात के सिद्धियों (अफ्रीकी आव्रजकों) के लोकनृत्य क्या खूब थे!

सम्मेलन की कमियों को भी स्पष्ट किया जाना ज़रूरी है। साहित्यकारों की उपेक्षा का मुद्दा इनमें प्रमुख है। विश्व हिंदी सम्मेलनों सहित हिंदी के अधिकांश आयोजनों में अब तक साहित्य का दबदबा रहता आया है। किसी भाषा की समृद्धि का अनुमान उसके साहित्य की समृद्धि से ही होता है। भाषा के वर्तमान, भविष्य, उसके सामने मौजूद चुनौतियों, उपलब्धियों, उसकी संपदा आदि पर होने वाला चिंतन-मनन और विमर्श साहित्य की उपस्थिति के बिना अधूरा है। सम्मेलन के चर्चा सत्रों में साहित्य को महत्व न दिया जाना एक कमजोर फैसला रहा। यदि यह कमी न छोड़ी जाती तो यह उत्कृष्ट

आयोजन संभवत: अब तक का सफलतम आयोजन भी बन जाता। वरिष्ठ पत्रकार और पूर्व संपादक श्रीमती मृणाल पांडेय ने सवाल उठाया है कि यदि साहित्य को महत्व नहीं देना था तो फिर भोपाल शहर में और आयोजन स्थल पर साहित्यकारों के इतने बड़े-बड़े चित्र क्यों लगाए गए हैं?सचमुच यह एक विस्मयकारी विरोधाभास था। सम्मेलन में हिंदी के इस पहलू को उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए था।

ऐसा क्यों हुआ होगा, इस बारे में सिर्फ अनुमान ही लगाए जा सकते हैं। सम्मेलन की सत्रवार योजना विदेश मंत्रालय के स्तर पर बनी थी। मैं यह नहीं मान सकता कि मंत्रालय का उद्देश्य साहित्य या साहित्यकारों के प्रति असम्मान दर्शाना रहा होगा क्योंकि वह राजनैतिक रूप से बहुत अपरिपक्वतापूर्ण निर्णय होता। अगर ऐसा होता तो भोपाल शहर के चौराहों पर और आयोजन स्थल के भीतर हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों के विशाल चित्र न लगाए गए होते। मंत्रालय का मंतव्य यह रहा होगा कि इस बार सम्मेलन को अलग ढंग से आयोजित किया जाए। उन्होंने सम्मेलन को अलग ढंग से आयोजित करके दिखाया भी- अधिक व्यवस्थित, अधिक प्रबंधित, व्यापक और भव्य। इसी अलग के लिए सम्मेलन की विषय-वस्तु में भी परिवर्तन किया गया। उसे अधिक युवकोचित, अधिक समयोचित बनाने की दृष्टि विदेश मंत्रालय के स्तर पर रही होगी। इसी प्रक्रिया में साहित्य की उपेक्षा हो गई। विदेश मंत्रालय के वे सलाहकार भी इसके लिए जिम्मेदार रहे होंगे जिन्होंने मंत्रियों को ऐसा करने की सलाह दी। मंत्रियों को क्या पता कि हर विश्व हिंदी सम्मेलन में साहित्यकारों का दबदबा रहता है?
साहित्य की उपेक्षा भले ही अखरी हो, यह अच्छा लगा कि पहली बार किसी विश्व हिंदी सम्मेलन में साहित्येतर हिंदी को प्रमुखता मिली। इसमें कुछ और पक्ष जोड़े जा सकते थे, जैसे- कारोबारी हिंदी, कार्टून की विधा, फ़िल्म और टेलीविजन की भाषा, हिंदी शब्द-संपदा, भाषा-विज्ञान आदि-आदि। कुछ सत्रों, विशेषकर तकनीक पर आधारित सत्रों, में पावरप्वाइंट प्रस्तुतियाँ देने की नगण्य सुविधा अखरी।

यूँ साहित्य इस सम्मेलन से पूरी तरह नदारद हो, ऐसा नहीं था। आयोजन स्थल पर दर्जनों हिंदी साहित्यकारों के विशाल चित्र और मूर्तियाँ थीं। साहित्य से इतर अन्य सत्रों में कई हिंदी साहित्यकार मौजूद थे, मसलन- मृदुला सिन्हा, नरेंद्र कोहली, चित्रा मुद्गल, कमल किशोर गोयनका, सुरेश ऋतुपर्ण,प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, डॉ. श्याम सिंह 'शशि', मृणाल पांडेय आदि आदि। बाल साहित्य के रूप में साहित्य की एक विधा पर चर्चा भी हुई। किंतु हाँ,सम्मेलन के हजारों प्रतिभागियों को देखते हुए साहित्यकारों की संख्या बहुत थोड़ी थी। भोपाल के साहित्यकारों की उपेक्षा करने से बचा जा सकता था। जिस शहर में इतना बड़ा वैश्विक आयोजन हो वहाँ के हिंदी के व्यक्तित्वों को जोड़ना ज़रूरी है। उनके शहर में, उनके बिना, हिंदी का इतना बड़ा उत्सव एक ज्यादती है। मीडिया की शिकायत रही कि सम्मेलन कवर करने आए पत्रकारों को सत्रों में बैठने की इजाजत नहीं मिली। शिकायत जायज है लेकिन सम्मेलन में कुछ हजार लोग हिस्सा ले रहे हों तो आयोजकों की दुविधा को भी समझा जा सकता है।

सम्मेलन की विशिष्टताओं में एक यह भी थी कि इसे निरी भाषणबाजी की बजाए दोतरफ़ा और समावेशी बनाने का प्रयास किया गया। प्रतिभागियों में युवाओं की अच्छी संख्या थी जिन्हें वक्ताओं से सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित किया गया। श्रोताओं के बीच मौजूद लोग भी बोले और एक सत्र में तो उनकी संख्या 50 से अधिक रही। सत्रों के मंतव्यों को भी बाकायदा सभी प्रतिभागियों के बीच पारित करवाया गया। हालाँकि अंत में उनकी संख्या कई दर्जन तक जा पहुँची जिन पर अमल कर पाना शायद इतना आसान न हो। मुझे लगता है कि जिन विषयों पर दो या तीन दिन तक सत्र रखे गए उन्हें यदि एक

दिन तक सीमित रखा जाता तो हिंदी के और भी कई पहलुओं पर सत्र रखे जा सकते थे। तब साहित्य को एक सत्र आवंटित करना बिल्कुल मुश्किल नहीं होता।

सत्रों के लिए वक्ताओं का चयन और बेहतर हो सकता था। विश्व हिंदी सम्मेलनों में इस चयन का क्या आधार होता है, यह मुझे कभी समझ नहीं आया। हर सम्मेलन के बाद मुझे यही लगा है कि विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के बारे में आयोजकों की जानकारी इतनी सीमित है तो वे अपने सलाहकारों पर आश्रित रहने की बजाए भिन्न-भिन्न स्रोतों से जानकारी क्यों नहीं जुटाते? सम्मेलन की वेबसाइट को लेकर भी विवाद रहे। कुछ प्रतिभागी वेबसाइट के माध्यम से पंजीकरण कराने में कई-कई दिन तक प्रयास करते रहे लेकिन नाकामी हाथ लगी। वेबसाइट की हिंदी में वर्तनी की त्रुटियों की तरफ़ मंत्रालय का ध्यान दिलाने के लिए बाकायदा अभियान चलाया गया। साइट पर मौजूद सामग्री भी न्यूनतम थी। कोई रचनात्मकता नहीं, कोई कल्पनाशीलता नहीं। सिर्फ सत्रों के कार्यक्रम का ब्यौरा और विभिन्न समितियों के सदस्यों के नाम। सम्मानित किए जाने वाले विद्वानों के नामों को लेकर अंतिम समय तक रहस्यजाल सा बना रहा। 'अलग' से सम्मेलन में थोड़ा खुलापन भी होता तो वह और 'अलग' सिद्ध होता।

प्रतिभागियों के ठहरने की व्यवस्था बेहतरीन थी। भोपाल बहुत बड़ा शहर नहीं है। वहाँ होटलों आदि की व्यवस्था भी आसान नहीं रही होगी, लेकिन देश-विदेश से आए प्रतिभागियों को न अपने कमरों से किसी तरह की शिकायत रही और न ही होटलों में ब्रॉडबैंड इंटरनेट की स्पीड में किसी तरह की कमी से। प्रदर्शनी भी उद्देश्यपरक और सार्थक थी, जिसमें पहली बार माइक्रोसॉफ्ट, गूगल और एपल जैसी कंपनियों ने भी हिस्सा लिया। सत्रों में जो कुछ जानने को मिला, उसे प्रदर्शनी ने और बढ़ाया।

दिल्ली से रवानगी से पहले किसी स्टेडियम में विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की कल्पना मात्र से मैं आशंकित था। लेकिन भोपाल में आयोजित हिंदी का यह वैश्विक आयोजन अद्वितीय रहा। याद रखने को बहुत कुछ था वहाँ- केंद्र और राज्य सरकारों की वह बेहतरीन जुगलबंदी, अभूतपूर्व किस्म की मेहमाननवाजी, हिंदी की भव्यता, समृद्धि, विशालता और गौरव, शैक्षणिक सत्रों का समावेशी स्वरूप और युवाओं के बीच भाषा के प्रति पैदा होता हुआ नया उत्साह। भोपाल ने हमें अपनी भाषा का उत्सव मनाना और उसके गौरव को जीना सिखा दिया! शिकायतें अपनी जगह हैं और रहें, लेकिन भोपाल ने विश्व हिंदी सम्मेलनों की श्रृंखला में ऐसा प्रतिमान स्थापित किया है, जिसे छू पाना अगले सम्मेलनों के लिए एक चुनौती रहेगी।